भगिनी निवेदिता

- प्रवाजिका आत्मप्राणा

भारत माता की अति प्रिय पुत्री, स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवेदिता पर हम जितना गर्व करें उतना हमारे लिए ही अच्छा है, इसीलिए कि इससे हमें अपने व्यक्तिगत, सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन को दिशा प्राप्त होगी, प्रेरणा मिलेगी। जिसने स्वयं को किसी भारतीय से अधिक अपने आप को भारत की माटी से एकाकार कर लिया, ऐसी भारतीय ज्ञान, दर्शन, संस्कृति, परम्परा व जीवन मूल्यों की जीवंत प्रतीक 'भगिनी निवेदिता' प्रत्येक भारतीय के लिए ऋषि तुल्य प्रातः स्मरणीय हैं। रामकृष्ण मिशन की प्रवाजिका आत्मप्राणा ने उनका जीवन, कार्य व सबसे ऊपर भारत के लिए उनका समर्पण अपनी पुस्तक 'भगिनी निवेदिता' में जिस सुंदर ढंग से गूँथा है, उसी का सार-संक्षेप यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

दार्जिलिंग के पर्वतों की सैर करने यदि हम जाएँ तो रेल्वे स्टेशन के नीचे हमें ईटों का बना एक स्मारक दिखाई देगा। उस स्थान की शान्त नीरवता से लगता है मानों प्रकृति माता ने सुरभित पवन और सुनहरी धूप की बाँहों में स्मारक को लपेट लिया है; और चहचहाती चिड़ियाओं और नाचते फूलों द्वारा वह उनके वहाँ होने का संकेत कर रही है।

यदि उसकी ओर तुम्हारा ध्यान जाए और तुम जानना चाहो कि यह किसका स्मारक है तो तुम्हें वहाँ संगमरमर का एक पत्थर लगा दिखाई देगा जिस पर लिखा है -

विश्राम स्थली
भगिनी निवेदिता रामकृष्ण परमहंस की
जिसने अपना सर्वस्व
भारतमाता को अर्पित किया।

निवेदिता नाम का अर्थ है 'समर्पित' जिसने सब कुछ भेंट चढ़ा दिया हो। कौन थी वह ? वह सब कुछ क्या था जो उसने भारत को अर्पित कर दिया और क्यों ? और क्यों स्नेहवश, लोगों ने उसके लिए यह स्मारक खड़ा किया ? यह जानकर तुम्हें आश्चर्य होगा कि निवेदिता भारतीय नहीं थी, और उनका जन्म भी भारत में नहीं हुआ था।

भगिनी निवेदिता का वास्तविक नाम मार्गरेट एलिजाबेथ नोबुल था। उनका जन्म सुदूर आयरलैण्ड में 28 अक्टूबर 1867 को हुआ था। उनके परिवार का नाम नोबुल था। उनके पिता सोमुएल रिचमण्ड धर्मोपदेशक थे। माता का नाम था इजाबेल हेमिल्टन।

धार्मिक आस्था और लोगों की सेवा के संस्कार उन्हें अपने पिता से विरासत में मिले थे। पिता की मृत्यु के उपरांत अपने कठिन जीवन में भी उन्होंने अध्ययन नहीं छोड़ा। अपनी सत्रह वर्ष की आयु में उन्होंने अपनी कॉलेज की शिक्षा पूरी कर ली। तदुपरांत वे इंग्लैण्ड गईं और सन् 1884 में केस्विक्स के एक स्कूल में पढ़ाने लगीं। सन् 1890 में वे विम्बलडन आईं और उन्होंने अपना एक स्कूल खोल लिया । थोड़े ही समय में वे अपने आकर्षक व्यक्तित्व, गहन ज्ञान, सेवा-भाव और धार्मिक चिन्तन के लिए लन्दन में प्रसिद्ध हो गईं। वे अपना अधिकांश समय अध्ययन-मनन और सत्य की खोज में लगाती थीं। और तभी एक घटना घटी जो उनके जीवन को एक सर्वथा नया मोड़ दने वाली थी। एक 'योगी' का लन्दन में आगमन हुआ। वह एक संन्यासी था, उसका नाम था 'स्वामी विवेकानन्द'। स्वामी जी 1893 के शिकागो के

विश्व धर्म सम्मेलन में ख्याति अर्जित कर अपने कुछ मित्रों के आग्रह पर इंग्लैंड आए थे। मार्गरेट की स्वामी जी से प्रथम भेंट यहीं हुई थी। मार्गरेट ने स्वामी जी के अनेक प्रवचन सुने, उनसे वाद-विवाद, तर्क-वितर्क किया और अपने आप को पूर्ण संतुष्ट कर लेने के उपरांत ही उन्होंने स्वामी विवेकानन्द को अपना आदर्श चुना। स्वामी जी के आह्वान पर मार्गरेट ने भारत जाना तय कर लिया।

28 अप्रैल 1896 को वे भारत आईं। वे बहुत अधिक प्रसन्न थीं। वे गंगा किनारे वेलूर मठ की एक कुटिया में दो अन्य अमेरिकन महिलाओं के साथ रहने लगीं जो स्वामी जी की शिष्या थीं। 15 मार्च 1898 को स्वामी जी ने उन्हें नया नाम 'निवेदिता' दिया और उन्हें भगवान व भारत माता के चरणों में अर्पित कर दिया।

स्वामी जी के साथ वे हिमालय की पैदल यात्रा पर निकलीं। मार्ग में पटना, वाराणसी, लखनऊ, पंजाब में रावलपिंडी, बारामूला होते हुए वे कश्मीर पहुँचे। प्रथम बार उन्हें भारत के तीर्थ, नदियाँ, पर्वत, ग्राम्य-जीवन व धर्मप्राण श्रद्धालु भारतीयों को देखने-समझने का अवसर मिला। स्वामी जी उन्हें भारत के इतिहास, भूगोल स्थानीय विशेषताओं, धर्म-दर्शन आदि के विषय में बताते रहते थे। वे अमरनाथ की दुर्गम यात्रा पर स्वामी जी के साथ अकेली गईं। इस यात्रा ने मानों उनके जीवन को परिवर्तित ही कर दिया। यहाँ उनकी अनेक साधु-संतों से भेंट हुई जो विभिन्न सम्प्रदायों के थे। इससे उन्हें धर्म को समझने में सहायता मिली।

लौटते समय वे लाहौर, आगरा, वाराणसी होते हुए कलकत्ता लौटे। यह यात्रा उनके आगामी जीवन की तैयारी थीं। उन्होंने गीता का अध्ययन आरम्भ किया और वे निरन्तर ध्यान करने लगीं। उन्होंने अपने आप को 'आत्मनः मोक्षार्थ जगदहिताय च' अर्थात जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य आत्मा के मोक्ष और जगत के हित के लिए समर्पित कर दिया। इसका अर्थ था कठोर साधना करते हुए पवित्र, सादा, निर्मल जीवन जीया जाए और विनम्रता पूर्वक जन-कल्याण में अपने आप को लगा दिया जाए। वे कलकत्ता में शारदा माँ के साथ रहतीं।

13 नवम्वर 1896 को कलकत्ता में अपने निवास के समीप ही उन्होंने लड़कियों का एक स्कूल आरम्भ किया। श्री माँ ने इस विद्यालय का उद्घाटन किया छोटी लड़कियों को उन्होंने पढ़ना-लिखना, मिट्टी का काम, चित्रकारी आदि सिखाया। निवेदिता को इसमें बड़ा सुख मिलता।

अगले वर्ष ही कलकत्ता में प्लेग फैल गया। स्वामी जी ने अपने सारे शिष्यों को सेवा कार्य में लगा दिया। निवेदिता ने युवाओं की एक टोली बनाई यह टोली दिन-रात, भूख-प्यास की चिन्ता छोड़ सेवा कार्य में जुटी रहती। रोगियों की चिकित्सा, सेवा, सफाई आदि कार्य यह टोली करती। निवेदिता स्वयं झाड़ू लेकर सफाई करतीं। भगिनी निवेदिता को इस निस्वार्थ सेवा का क्या पुरस्कार मिला ? लोगों का स्नेह, प्रेम और आदर! जिला चिकित्सा अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा - 'निवेदिता अपने आराम, स्वास्थ्य, भोजन तक की चिन्ता न कर गन्दी बस्तियों में घूमती रही।'

निवेदिता ने अपना नया विद्यालय एक नए प्रयोग के रूप में आरम्भ किया था किन्तु छः माह में ही पता चल गया कि धन के अभाव के कारण इसका चलना संभव नहीं। धन संग्रह के लिए निवेदिता ने इंग्लैण्ड-अमेरिका जाना तय किया। संयोग से स्वामी विवेकानन्द जी अपनी दूसरी विदेश यात्रा पर निकल रहे थे। निवेदिता ने अपने गुरु के साथ जाने के सान्निध्य के इस सुयोग को नहीं छोड़ा। एक मास से अधिक की इस समुद्र यात्रा में निवेदिता को अपने गुरु से बहुत कुछ सीखने का अवसर मिला।

धन संग्रह के लिए इंग्लेण्ड के उपरांत अमेरिका गईं। यहाँ उन्होंने देखा कि तथाकथित लोगों द्वारा भारत की

झूठी व घृणित तस्वीर प्रस्तुत की जा रही थी- विशेषकर भारतीय महिलाओं की दुरावस्था पर। उन्होंने तुरंत इसका प्रतिकार आरम्भ किया और न्यूयार्क, शिकागो, जैक्शन, डिट्रायड, बॉस्टन आदि अनेक स्थानों पर भारतीय नारी का सही चित्र रखा। वे भारतीय महिलाओं का सरल स्वभाव, हृदय की पवित्रता, उनकी निष्ठा सच्चाई के चित्र खींचती। वे अपने अभियान में सफल रहीं। वे अमेरिका से फ्रांस व पुनः इंग्लैण्ड गईं।

सन् 1901 में वे भारत लौट आईं। चार वर्ष पूर्व के और अब के आने में अंतर था। तब वे भयभीत सी एक विदेशी धरती पर आई थीं किंतु वे आज अपनी माता, मातृभूमि की गोद में लौटी थीं। वे कलकत्ता के अपने इसी बागपाड़ा स्थित निवास में रहने लगी थीं, जहाँ वे जीवन के अंत तक रहीं। इसे वे छोड़ भी कैसे सकती थीं। शारदा माँ और प्रवास में आने पर स्वामी जी व उनके अनेक शिष्य भी यहीं रहते थे। यहीं उनका प्रथम विद्यालय भी था। यहीं देश के बड़े-बड़े राजनेता, समाज-सुधारक, धार्मिक नेता श्री माँ व स्वामी विवेकानन्द के दर्शन करने आते थे।

प्रारम्भ में विद्यालय में कोई अपनी बालिका को नहीं भेजता था, किन्तु धीरे-धीरे निवेदिता का सरल व सेवा-भावी व्यक्तित्व प्रभावी हुआ और विद्यालय बढ़ने लगा। विद्यालय चलाने के लिए उनके मित्र धन भेजते, शेष वह पुस्तकें लिख कर पूरा करतीं। धीरे-धीरे अलग से ही एक महिला विद्यालय आरम्भ हो गया। आज भी उस स्थान पर ''रामकृष्ण शारदा मिशन भगिनी निवेदिता बालिका विद्यालय'' चल रहा है।

स्वामी जी अस्वस्थ थे और अधिकतर वेलूर-मठ में ही रहते थे। 2 जुलाई 1902 को वे अपने गुरु से मिलने आईं। स्वामी जी का उपवास था किन्तु उन्होंने निवेदिता को अत्यंत स्नेह सहित अपने पास बैठा अपने हाथ से भोजन कराया। फिर स्वयं ने जल से निवेदिता के हाथ धोए और तोलिए से हाथ पौंछे। निवेदिता ने इसका विनम्र विरोध किया और कहा ''स्वामी जी'' इस प्रकार की सेवायें तो मुझे आपकी करनी चाहिए, आप मेरे गुरु हैं। स्वामी जी ने गंभीरता पूर्वक उत्तर दिया, ''प्रभु यीशु ने तो अपने शिष्यों के पाँव धोए थे।'' निवेदिता ने उत्तर दिया, ''परन्तु ईसा मसीह ने तो ऐसा अपने अंतिम समय पर किया था।'' कहकर भी निवेदिता शायद इसका अर्थ नहीं समझ पाईं और लौट आईं और शुक्रवार की रात्रि में ही स्वामी जी ने देह त्याग कर दिया। निवेदिता पर मानो वज्रपात हुआ।

किन्तु वे निराश-उदास हो कर बैठ नहीं गईं। अपने मित्र को उन्होंने लिखा, वे मरे नहीं वे सदा हमारे साथ हैं। मैं तो बैठ कर दुख भी नहीं कर सकती हूँ। मैं केवल काम करना चाहती हूँ, काम ! उनके लिए यही सच्ची श्रद्धांजलि है।

अब तक वे केवल शिक्षा में ही अपनी शक्ति लगाए हुई थीं, किन्तु अब उनका क्षेत्र विस्तीर्ण हो गया। उन्होंने निश्चय किया कि वे अब राजनैतिक स्वतंत्रता के राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान करेंगी। उन्होंने निर्भय होकर अपनी मूल जाति के विरोध में ही उग्र, तेजस्वी भाषण देना आरम्भ किया, लेख लिखे। वे सम्पूर्ण देश में घूमी और भावपूर्ण ओजस्वी भाषण दिए। युवक और युवतियाँ बड़ी संख्या में उनका व्याख्यान सुनने आते। एक बार उन्होंने अपने सम्बोधन में कहा, ''अपने देश का हित तुम्हारा सच्चा लक्ष्य होना चाहिए। उसे साहित्यिक प्रवृत्तियों अथवा कुशलता से लिखे गए लेखों अथवा चमत्कारिक भाषणों द्वारा पाने की चेष्ठा मत करो। सोचो, समूचा देश तुम्हारा देश है और तुम्हारे देश को काम की आवश्यकता है।'' जब देश में 'वन्दे-मातरम्' गाना अपराध था, उनकी पाठशाला में यह नित्य होता था।

सन् 1905 के प्रथम स्वदेशी आन्दोलन में उन्होंने बढ़ चढ़कर भाग लिया और स्वयं भी चर्खे का कता मोटा-झोटा स्वदेशी वस्त्र पहनने लगीं। अपने विद्यालय में उन्होंने चर्खा कातना आरम्भ करा दिया।

उनका प्रिय विषय भारतीय चित्रकला व विज्ञान था। अत: उन्होंने उस समय के प्रसिद्ध चित्रकार व वैज्ञानिकों को प्रेरित किया। वे चित्रकारों को पश्चिमी, नकल करने से रोकती और कहती, रामकृष्ण, बुद्ध, महावीर, शिवाजी, प्रताप का चित्र बनाओ। उनका सर जगदीश चन्द्र बसु से निकट संबंध था और इस महान वैज्ञानिक की उन्होंने अनेक बार आर्थिक सहायता की थी।

वे भारतीय स्त्रियों से अत्यधिक प्रभावित थीं। वे उन्हें लजालु, विनम्र, स्वाभिमानी, सच्चरित्र, सेवाभावी, निष्ठावान और सच्ची मनुष्य दिखाई देती थीं। वे उन्हें शिक्षित तो करना चाहती थीं किन्तु पश्चिम का अन्धानुकरण कर तथा कथित आधुनिक शिक्षा से नहीं जो उनके मूल गुणों को ही नष्ट कर दें। उनके विचार में पश्चिमी शिक्षा से उनके स्वाभाविक विनम्रता व सेवा भाव के स्थान पर अहंकार, सामूहिक गृहस्थ जीवन के स्थान पर व्यक्तिवाद, सरलता व सादगी के स्थान पर फैशन आ जाएगा जो देश को ही समाप्त कर देगा। वे भारत को महान महिलाओं का देश कहा करती थीं। वे भारत की महिलाओं में पत्नी की पवित्रता व पतिव्रता धर्म व माता को नि:स्वार्थ ममता और उसके स्नेहपूर्ण वात्सल्य का गुणगान करतीं वे महिलाओं को लक्ष्मीबाई व अहिल्याबाई के वीरतापूर्ण कार्यों की याद दिलातीं। जिन्होंने अपने जीवन की अन्तिम साँस तक मातृभूमि की सेवा की थी। निवेदता का विश्वास था कि एक बार भारत की स्त्री जाति जाग जाए तो देश पुन: महान हो सकेगा।

वे समस्त समस्याओं, यहाँ तक कि देश की स्वतंत्रता का हल भी भारत की एकता में देखती थीं। विभिन्न जातियों, प्रान्त, भाषा आदि के विभेद उनकी दृष्टि में ऊपरी थे, जो एक सच्चे आह्वान पर समाप्त हो, एक भारत के लिए समर्पित हो सकते थे। उनकी दृष्टि में समस्त नर-नारी भारत माता के विभिन्न अंग हैं जिनमें उत्तर भारत के लोग भुजाएँ दक्षिण भारत के लोग मस्तिष्क व पूर्व के लोग उसका हृदय हैं।

अपने समय के प्रसिद्ध राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक लोगों व कलाकारों से उनका घनिष्ठ परिचय था। अवकाश के दिन प्राय: वे जगदीशचन्द्र बसु के यहाँ चली जातीं, यात्राओं में उनके साथ रहतीं, दार्जिलिंग में अंतिम श्वाँस भी उनके साथ ही छोड़ी। बोस उन्हें उस समय के निराशामय वातावरण में अपना प्रेरणा स्त्रोत मानते थे। उग्रवादी नेता रासबिहारी बोस, अरविन्द घोष आदि उनके घनिष्ठ थे तो गोपालकृष्ण गोखले, सुरेन्द्र नाथ पाल, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी उनका हृदय से सम्मान करते थे। उनकी लिखी पुस्तकें, उनके भारत-प्रेम, लेखन-कौशल और हृदय-स्पर्शिता के लिए आज भी पठनीय है।

भारत की जलवायु, उनका कठोर संयमी स्वभाव व अनथक परिश्रम उनको अक्सर अस्वस्थ कर देते, पर वे रुकती नहीं थी- सन् 1905 में वे गंभीर बीमार पड़ी किन्तु सन् 1906 में भयंकर दुर्भिक्ष में उन्होंने अनथक परिश्रम व सेवा की। वे भयंकर प्रकार के मलेरिया से ग्रस्त हो गईं किन्तु उन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा परन्तु वे पूर्ववत् कभी स्वस्थ नहीं हो पाईं।

सन् 1911 में बोस परिवार के साथ दार्जिलिंग गईं और 13 अक्टूबर को प्रात: भारतमाता की इस महान पुत्री ने उपनिषदों के इस रुद्रस्तवन का निरन्तर पाठ करते हुए अपने प्राण छोड़े-

'असतो मा सद्गमय,

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

मृत्योर्मा अमृतं गमय।'

अभ्यास

बोध प्रश्न

1. स्वामी विवेकानन्द से निवेदिता की मुलाकात कब, कहाँ और कैसे हुई ?
2. स्वामीजी के साथ हिमालय यात्रा में निवेदिता को क्या अनुभव हुए ?
3. अमरनाथ यात्रा से भगिनी निवेदिता को भारत को समझने में किस तरह सहायता मिली ?
4. कलकत्ता में फैले प्लेग के समय निवेदिता ने किस प्रकार सेवा की ?
5. स्त्री-शिक्षा पर निवेदिता का विचार स्पष्ट कीजिए।
6. भारतीय स्त्रियों के कौन-कौन से गुणों ने निवेदिता को प्रभावित किया ?

योग्यता विस्तार

1. भारतीय जीवन मूल्य, ज्ञान, दर्शन एवं संस्कृति के लिए समर्पित अन्य महिलाओं के नाम खोजिए और उनकी जीवनी लिखिए।
2. स्वामी विवेकानंद के साहित्य को पुस्तकालय से लेकर पढ़िए।
3. 'मदर टेरेसा' पर एक जीवन वृत्त तैयार कीजिए।
4. स्त्री शिक्षा हेतु किए जा रहे प्रयासों की जानकारी प्राप्त कीजिए तथा अपने विचार लिखिए।

शब्दार्थ

तदुपरान्त = इसके पश्चात्। **अर्जित** = कमाया हुआ। **लक्ष्य** = उद्देश्य। **सान्निध्य** = निकटता। **सुयोग** = अच्छा अवसर। **विस्तीर्ण** = फैला हुआ। **अनथक** = बिना थके हुए। **पूर्ववत्** = पहले की तरह।